Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

कृदन्तविमर्श- आचार्य विश्वेश्वर की दृष्टि में

भूपेन्द्र,
शोधछात्र, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली, भारत।
डॉ.सत्यपाल सिंह, शोधनिर्देशक,
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number: 122-126
Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 10 Oct 2020
Published : 20 Oct 2020

ABSTRACT

सारांश –संस्कृत व्याकरण की परम्परा में आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी का विशेष योगदान है। अष्टाध्यायी के सूत्रों का समय समय पर विभिन्न आचार्यों ने व्याख्यान किया। इसी क्रम में आचार्य विश्वेश्वर का नाम आता है। इन्होंने पाणिनीय सूत्रों को नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास किया। प्रस्तुत शोधपत्र में कृदन्त प्रकरण को विषय बनाया गया है अत: यहाँ कृदन्त प्रकरण में प्रतिपादित सूत्रों पर ही विचार किया गया है। कृदन्त प्रकरण के अनेक स्थलों पर आचार्य विश्वेश्वरसूरि, महाभाष्यकार–न्यासकार–पदमंजरीकार तथा भट्टोजि दीक्षित के मत से साम्य रखते हैं परन्तु कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहाँ सुधानिधिकार अपने से पूर्ववर्ती वैयाकरणों से आगे बढकर नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया हैं। इस शोधपत्र से कृदन्त के विषय में आचार्य विश्वेश्वर की सूक्ष्म दृष्टि का बोध तो होता ही है साथ ही कृदन्त प्रकरण को समझने में यह अत्यन्त उपयोगी भी है।

Keywords : संस्कृत, व्याकरण, कृदन्त, विश्वेश्वर, पाणिनि, अष्टाध्यायी

भारतीय संस्कृति का आधार चतुर्दशविद्या है। चतुर्दश विद्याओं में चार वेद, छ: वेदाङ्ग और चार आन्विक्षिकी आदि[1] विद्याओं को ग्रहण किया जाता है। छ: वेदाङ्गों में व्याकरण का स्थान प्रमुख माना गया है। व्याकरण को वेदरूपी पुरुष

[1] टिप्पणी– आन्विक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति को मिलाकर चतुर्दशविद्या कही जाती हैं। परन्तु कुछ विद्वानों ने इन चारों के स्थान पर दर्शन, साहित्यशास्त्रादि को चतुर्दशविद्याओं में स्वीकार किया है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

का मुख कहा गया है।[2] व्याकरणशास्त्र के विकासक्रम में आचार्यों की एक विस्तृत परम्परा ने अपना योगदान दिया है। इनमें पाणिनि का विशेष स्थान है, इन्होंने अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों का अध्ययन करके सर्वाङ्गपूर्ण अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ की रचना की। कात्यायन ने इसे और भी परिपूर्ण करने के लिए वार्तिकों की रचना की। इसी परम्परा में पतञ्जलि ने पाणिनि के सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों को आधार बनाकर सर्वातिशायी ग्रन्थ व्याकरणमहाभाष्य की रचना की। इस प्रकार पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि संस्कृत व्याकरण के तीन प्रमुख व्याख्याता हुए, जिन्हें परम्परा त्रिमुनि नाम से पुकारती है। इन तीनों में व्याकरण का क्रमिक विकास देखने को मिलता है। इसलिए पाणिनि की अपेक्षा कात्यायन और कात्यायन की भी अपेक्षा पतञ्जलि अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं।[3] इनमें भी पतञ्जलि प्रौढ पाण्डित्य, गम्भीर अर्थविवेचन और व्यापक दृष्टिकोण के कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं। इसके बाद भी वैयाकरणों ने अष्टाध्यायी के सूत्रों पर समय-समय पर निरन्तर विश्लेषण का काम जारी रखा। कालान्तर में अष्टाध्यायी के ऊपर अनेक वृत्तिग्रन्थ लिखे गए हैं। जिनमें काशिका और सिद्धान्तकौमुदी प्रसिद्ध हैं। काशिका पर जिनेन्द्र बुद्धि ने न्यास और हरदत्त ने पदमञ्जरी नामक व्याख्या लिखी तथा सिद्धान्तकौमुदी पर भट्टोजि दीक्षित ने स्वयं प्रौढमनोरमा, ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने तत्वबोधिनी तथा नागेश भट्ट ने शेखर व्याख्या लिखी है। इसी क्रम में 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आचार्य विश्वेश्वरसूरिकृत् व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या का विलक्षण ग्रन्थ है। आचार्य विश्वेश्वर ने महाभाष्य की शैली को आधार बनाकर व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि नामक वृत्तिग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में पाणिनि के सूत्रों को न्यासकार, पदमंजरीकार और महाभाष्यकार के अनुसार उहापोह पूर्वक विश्लेषण करके नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। कईं ग्रन्थों के विश्लेषण और नव्यन्यायभाषा प्रयोग से यह ग्रन्थ जटिल व दुरुह होता चला गया। सम्भवत: इसी कारण से इस ग्रन्थ को अधिक प्रसिद्धि नहीं मिल सकी इसलिए यह लुप्तप्राय: हो गया। डॉ. दयानन्द भार्गव और जोधपुर के आचार्य डॉ0 सत्यप्रकाश दुबे के अथक परिश्रम से यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से प्रकाशित होकर विद्वज्जगत् के सम्मुख उपस्थित हो पाया है।

सुधानिधि के कृदन्त प्रकरण में आचार्य विश्वेश्वरसूरि ने प्राय: महाभाष्यकार और न्यासकारादि पूर्व आचार्यों के मत का अनुसरण किया है परन्तु अनेक सूत्रों में नवीन कल्पना पूर्वक मतवैभिन्य भी दृष्टिगोचर होता है। ऐसे ही कतिपय सूत्रों को इस शोधपत्र का विषय बनाया गया है। जो निम्न प्रकार है-

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्[4] सूत्र के अनुसार **धातो:**[5] के अधिकार में असरूप प्रत्यय वाला अपवाद सूत्र उत्सर्ग सूत्र का विकल्प से बाधक होता है। **धातो:** सूत्र का अधिकार तृतीय अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जाता है अत: तृतीय अध्यायस्थ तव्यादि प्रत्यय धातु से होते हैं।[6] व्याकरण का प्रमुख नियम यह है कि अपवाद सूत्र, उत्सर्ग सूत्र का नित्य बाधक होता है परन्तु इस प्रमुख नियम में **वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्** सूत्र ने शिथिलता प्रदान की। आचार्य विश्वेश्वरसूरि इस सूत्र के आशय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -**असरूपवावचनमुत्सर्गस्य बाधकविषये प्रवृत्यर्थम्**[7] अर्थात् तृतीय अध्याय में अपवाद सूत्र

[2] मुखं व्याकरणं स्मृतम्। पाणिनीय शिक्षा

[3] यथोत्तरमुनिनां प्रामाण्यम्।

[4] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.1.94

[5] अष्टाध्यायी। 3.1.91

[6]अष्टाध्यायी-भाष्य- प्रथमावृत्ति। 3.1.91

[7]व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । वासरूपोऽस्त्रियाम्।3.1.94

की विकल्प से प्रवत्ति के लिए प्रकृत सूत्र का कथन किया गया है। ध्यान देने योग्य बात है कि यह नियम तृतीय अध्याय के **धातोः** सूत्र के अधिकार में ही प्रवृत्त होता है अन्यत्र नहीं।

तव्यत्तव्यानीयरः[8] उत्सर्ग सूत्र है तथा **अचो यत्**[9] अपवाद सूत्र है। दोनों सूत्र तृतीय अध्यायस्थ **धातोः** के अधिकार में उपस्थित **वाऽसरूपऽस्त्रियाम्** की शर्त को भी पूर्ण कर रहें हैं अतः वाऽसरूपविधि के अनुसार विकल्प से अजन्तधातुओं से तव्यदादि प्रत्ययों की भी प्राप्ति हो जाती है। यह भाव आचार्य विश्वेश्वर से भिन्न वैयाकरण स्वीकार करते हैं परन्तु आचार्य विश्वेश्वर इस भाव को स्वीकार नहीं करते हैं। ये कहते हैं कि तव्यदादि प्रत्यय **वाऽसरूपऽस्त्रियाम्** सूत्र के उदाहरण हो ही नहीं सकते क्योंकि अपवाद सूत्र की विकल्प से प्रसक्ति के कारण तव्यदादि प्रत्यय नहीं होते अपितु आरम्भ सामर्थ्य से तव्यदादि प्रत्यय होते हैं। इसका कारण बताते हुए आचार्य कहते हैं कि धातुएँ दो प्रकार की होती हैं- अजन्त और हलन्त। **अचो यत्** तथा **ऋहलोर्ण्यत्**[10] से क्रमशः अजन्त धातुओं से **यत्** व हलन्त धातुओं से **ण्यत्** प्रत्यय का विधान किया गया है, इनमें सभी विषय आ जाते हैं तथा **तव्यत्तव्यानीयरः** सूत्र के लिए कोई स्थल बचता ही नहीं किन्तु तव्यादि प्रत्ययों का विधान तो किया ही गया है अतः आचार्य विश्वेश्वर के मत में विधान सामर्थ्य से धातुओं से तव्यादि प्रत्यय हो जाते हैं। तव्यादि प्रत्ययों का विधान करने वाला (**तव्यत्तव्यानीयरः**) सूत्र, उत्सर्ग सूत्र तो है परन्तु आचार्य विश्वेश्वर इस सूत्र का कोई अपवाद सूत्र नहीं मानते अतः वे वासरूपविधि की प्रसक्ति भी इस सूत्र में स्वीकार नहीं करते हैं। इसलिए **अचो यत्** और **तव्यत्तव्यानीयरः** सूत्र के विषय में उत्सर्ग-अपवादव्यवस्था को ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार **पचादिभ्यः सर्वधातुभ्योः अच्** और **ण्वुल्तृचौ** में भी वासरूपविधि की प्रवृत्ति नहीं हो होती यहाँ भी आरम्भ सामर्थ्य से सिद्धि समझनी चाहिए। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस विषय में वासरूप की प्रवृत्ति होगी? आचार्य वश्विेश्वरसूरि वाऽसरूपविधि को **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** और **ण्वुल्तृचौ** इत्यादि सूत्रों के विषय में समावेशार्थ मानते हैं। क्योंकि कर्ता अर्थ में धातु से **ण्वुल्** और **तृच्** प्रत्यय होते हैं इसी अर्थ में केवल इगुपध, ज्ञा, प्री, किर् धातुओं से **क** प्रत्यय भी होता है अतः **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** सूत्र **ण्वुल्तृचौ** का अपवाद बनता है और अपवाद को छोडकर उत्सर्ग लगता है परन्तु यहाँ वाऽसरूप परिभाषा के कारण विकल्प से **ण्वुल्** और **तृच्** प्रत्ययों के साथ **क** प्रत्यय की भी प्रसक्ति होकर बुधः, बोद्धा, बोधकः तीनों इष्ट रूप निष्पन्न हो जाते हैं। **क** असरूप अपवाद प्रत्यय भी है और **स्त्रियाम् क्तिन्**[11] के प्रसिद्ध अधिकार में भी इसकी गणना नहीं है इसलिए वाऽसरूप परिभाषा की प्रसक्ति यहाँ हो जाती है।

इस प्रकार तो **ण्वुल्तचौ** सूत्र की प्रसक्ति भी विधान सामर्थ्य से स्वीकार करनी चाहिए परन्तु इसकी प्रसक्ति विधान सामार्थ्य में स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि **ण्वुल्तृचौ** सूत्र को इगुपध, ज्ञ, प्री और कृ धातुओं से अन्य धातुओं में अवकाश है जबकि **तव्यत्तव्यानीयरः** को अन्य धातुओं में अवकाश ही नहीं मिलता है अतः **ण्वुल्तृचौ** सूत्र उत्सर्गापवाद

[8] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.1.96

[9] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.1.97

[10] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.1.124

[11] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.3.94

विषय के अन्तर्गत आ जाने पर इसमें वासरूपविधि घट जाती है तथा **तव्यतव्यानीयर:** सूत्र इसमें नहीं आ पाता है अत: इसमें वासरूपविधि भी नहीं घटती है। ऐसा आचार्य विश्वेश्वर का मत है।

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् सूत्र में अस्त्रियाम् का एक अर्थ स्त्रीलिंग को छोडकर भी हो सकता है परन्तु आचार्य विश्वेश्वरसूरि **वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्** सूत्र में अस्त्रियाम् से **स्त्रियाम् क्तिन्** सूत्र में विद्यमान स्त्रियाम् पद के अधिकार को ही ग्रहण करना उचित समझते हैं क्योंकि सूत्र में अस्त्रियाम् का अर्थ स्त्रीलिंग रहित मानने पर लव्या और लवितव्या दोनों इष्टरूप निष्पन्न ही नहीं हो सकते क्योंकि **अचो यत्** सूत्र स्त्रीलिंग में नित्य ही **तव्यत्तव्यानीयर:** सूत्र को बाधित करने लगता। इसके साथ ही **भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र**[12] महाकवि कालिदास के द्वारा किया गया स्त्रिलिंग में तव्यत् प्रत्यय का प्रयोग भी यही दर्शाता है कि- सूत्र मे अस्त्रियाम् पद से स्तिर्लिङ्ग का ग्रहण अनभिष्ट है। अत: **अस्त्रियाम्** से तृतीय अध्यायस्थ स्त्री अधिकार को ही ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार एक अन्य सूत्र को लेकर विचार किया जा रहा है जो निम्नप्रकार है-

भुवश्च[13] सूत्र का अर्थ है कि- छन्द विषय में **भू** धातु से तच्छीलादि कर्ता अर्थ में **इष्णुच्** प्रत्यय होता है। भविष्णु:, प्रभविष्णु:। काशिका में चकार का ग्रहण का प्रयोजन अनुक्त समुच्चय के लिए बताया गया है। यथा - **भ्राजिष्णु**।: अनुक्त समुच्चय कहने से भ्राजादि धातुओं का भी ग्रहण हो जाता है। वैष्णवमत में **प्रभविष्णु**पद का प्रयोग : दिखाई देता है। परन्तु सुधानिधिकार ने वैष्णवमत में**प्रभविष्णु:** पद को असाधु ग्रहण करते हुए प्रमादपाठ माना है और पदमञ्जरीकार भी इस प्रयोग को **नैतद्भाष्ये समाश्रितम्**[14] कहकर असाधु स्वीकार करते हैं। इसके साथ ही कुछ वैयाकरण **क्षयिष्णु:** पद का प्रयोग करते हैं परन्तु इस प्रकार के प्रयोग की चर्चा महाभाष्य, काशिका, न्यास तथा पदमंजरी आदि ग्रन्थों में न होने पर सुधानिधिकार ऐसे प्रयोग को मूल से अतिरिक्त स्वीकार करते हैं।

इसी प्रकार **निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूत्रो वुञ्**[15] सूत्र पर विचार करते हुए आचार्य विश्वेश्वर कहते हैं -तच्छीलादि कर्ता अर्थ में निन्द, हिंस, क्लिशादि धातुओं से **वुञ्** प्रत्यय होता है। निन्दक:,हिंसक: इत्यादि।

महाभाष्य, काशिका और अष्टाध्यायी के मूलपाठों में **निन्दहिंस---भाषासुयो वुञ्** पाठ मिलता है परन्तु सुधानिधि में **निन्दंहिंसभाषासूत्रो... वुञ्** अर्थात् यकार के स्थान पर ञकार का पाठ मिलता है। काशिका में **निन्दंहिंस**[16]**:भाषासूय**... प्रथमान्त पद है परन्तु इष्ट अर्थ के लिए काशिकाकार ने सूत्र में पञ्चमी के अर्थ में प्रथमा का प्रयोग माना है। सुधानिधिकार कहते हैं कि सूत्र में पञ्चमी के अर्थ में प्रथमा का प्रयोग मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सुधानिधिकार के मत में सूत्र का अन्तिम भाग वस्तुत :**भाषासूय:** न होकर **भाषासूत्र:** है और यह पद स्वरूपत: पञ्चम्यन्त है। इस पद को पञ्चम्यन्त स्वीकार करने से अनिष्ट की आपत्ति भी नहीं होती अत: इस सूत्र में आचार्य विश्वेश्वरसूरि द्वारा भाषासूत्र: पद को पञ्चम्यन्त स्वीकार करना उचित प्रतीत हो रहा है।

---

[12] अभिज्ञानशाकुन्तलम्। प्रथम अंक, श्लोक 16

[13] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.2.138

[14] भुवश्च।3.2.138 काशिका न्यास-पदमंजरी-भावबोधिनि, तृतीय भाग, जयशङ्कर लाल त्रिपाठी, पेज 523

[15] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.2.146

[16] काशिका न्यास-पदमंजरी-भावबोधिनी,तृतीय भाग ।3.2.146

अब **मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च**[17] सूत्र पर विचार किया जाता है। मति, बुद्धि और पूजा अर्थ वाली धातुओं से वर्तमानकाल अर्थ में **क्त** प्रत्यय होता है। राज्ञां मत: पुजित: बुद्धम: वा। ज्ञातम् पद भी बुद्यर्थक है। प्रकृत सूत्र के नियम से बुद्यर्थक होने पर **ज्ञातम्** पद वर्तमान काल में ही प्रयुक्त होना चाहिए परन्तु आचार्य विश्वेश्वर कहते हैं कि- ज्ञातम् शब्द का प्रयोग भूतकाल में भी होता है क्योंकि **तेन प्रोक्तम्**[18] सूत्र के अधिकार में **उपज्ञाते**[19] सूत्र में भूतकाल अर्थ में क्त प्रत्यय का प्रयोग दिखाई देता है। यथा -**पाणिनिना उपज्ञातम् पाणिनीयम्।** यदि यहाँ वर्तमान काल में क्त प्रत्यय का प्रयोग होता तो **क्तस्य च वर्तमाने(वतर्मानस्थस्य क्तस्य योगे षष्ठि स्यात्। राज्ञां मत:)**[20] सूत्र से कर्तृपद 'पाणिनि' में षष्ठि विभक्ति की आपत्ती होने लग जाती परन्तु 'उपज्ञातम्' पद में **क्त** प्रत्यय का प्रयोग भूतकाल में स्वीकृत करने पर षष्ठि विभक्ति की आपत्ति भी नहीं होती। अत: निष्कर्ष निकलता है कि आचार्य विश्वेश्वर के मत में क्वचित् बुद्यर्थक धातुओं से भूतकाल में भी क्त प्रत्यय का प्रयोग दिखाई देता है।

ऊपर बताया जा चुका है कि- अनेक स्थलों पर आचार्य विश्वेश्वरसूरि महाभाष्यकार-न्यासकार-पदमंजरीकार तथा भट्टोजि दीक्षित के मत से साम्य रखते हैं परन्तु कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहाँ सुधानिधिकार अपने से पूर्ववर्ती वैयाकरणों से आगे बढकर नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। उपर्युक्त कृदन्त सूत्रों के विवेचन से यह स्पष्ट है कि- प्रस्तुत शोधपत्र में आचार्य विश्वेश्वरसूरि ने नवीन कल्पना प्रस्तुत करके पाणिनीय सूत्रों को नवीन रीति से समझने-समझाने का एक नया मार्ग प्रशस्त किया है।

ग्रन्थ-सूची

1. विश्वेश्वरसूरि.वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि. सम्पादक डॉ. सत्यप्रकाश दुबे, प्रकाशक राजस्थान पत्रिका, जोधपुर, राजस्थान।
2. कालिदास.अभिज्ञानशाकुन्तलम्. सम्पादक निरुपण विद्यालंकार, प्रकाशक रतिराम शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ।
3. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु. अष्टाध्यायी-भाष्य-प्रथमावृत्ति. प्रकाशक रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत हरियाणा
4. वामन जयादित्य. काशिका न्यास-पदमंजरी-भावबोधिनी-सहिता. सम्पादक डॉ. जयशङ्कर लाल त्रिपाठी, डॉ. सुधाकर मालवीय. प्रकाशक तारा प्रिंटिंग वर्क्स वाराणसी 1984
5. पाणिनि. अष्टाध्यायी. सम्पादक. आचार्य हरिदेव. नीता प्रकाशन दिल्ली
6. भट्टोजि दीक्षित. वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी. सम्पादक गोपालदत्त पाण्डेय. प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

[17] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 3.2.188

[18] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 4.3.101

[19] व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि । 4.3.115

[20] सिद्धान्तकौमुदी। 625